REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 14 | ISSUE - 12 | SEPTEMBER - 2025

हिंदी साहित्य में स्त्री, जाति और वर्ग: अंतर्विभाजक नारीवादी दृष्टि से एक अध्ययन

Dr. A. V. Nandaniya
Associate Professor,
Shri V. M. Mehta Muni. Arts & Commerce College, Jamnagar.

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में स्त्री-जीवन का चित्रण लंबे समय से साहित्यिक विमर्श का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। स्त्री की अस्मिता, स्वतंत्रता, देह, विवाह, परिवार, मातृत्व, शिक्षा और सामाजिक अधिकारों जैसे प्रश्नों ने हिंदी साहित्य में अनेक रचनात्मक और आलोचनात्मक बहसों को जन्म दिया है। किंतु स्त्री को केवल 'स्त्री' के रूप में देखने से उसके अनुभवों की पूरी जटिलता सामने नहीं आती। भारतीय सामाजिक संरचना में स्त्री की स्थिति केवल उसके लैंगिक अस्तित्व से निर्धारित नहीं होती, बल्कि जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र, भाषा, शिक्षा और आर्थिक स्थिति जैसी अनेक सामाजिक शक्तियाँ उसके जीवन को प्रभावित करती हैं। इसलिए हिंदी साहित्य में स्त्री-अनुभव को समझने के लिए एक ऐसी दृष्टि आवश्यक है जो इन सभी कारकों के पारस्परिक संबंधों को पहचान सके।

यहीं से **अंतर्विभाजक नारीवादी दृष्टि** (Intersectional Feminist Perspective) की आवश्यकता सामने आती है। अमेरिकी विधिवेत्ता और नारीवादी चिंतक **किम्बर्ले क्रेंशॉ (Kimberlé Crenshaw)** ने 1989 में अपने प्रसिद्ध लेख "Demarginalizing the Intersection of Race and Sex" में यह स्पष्ट किया कि स्त्री के अनुभव को केवल 'लिंग' के आधार पर समझना पर्याप्त नहीं है। नस्ल और लिंग के संयुक्त प्रभाव से अश्वेत महिलाओं के अनुभव श्वेत

महिलाओं या अश्वेत पुरुषों के अनुभवों से अलग बनते हैं [1]। भारतीय संदर्भ में इसी तर्क को जाति, वर्ग और लिंग के पारस्परिक संबंधों के संदर्भ में समझा जा सकता है।

हिंदी साहित्य में यह प्रश्न विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि भारतीय समाज की जाति-व्यवस्था और वर्गीय असमानता स्त्री के जीवन को अलग-अलग स्तरों पर प्रभावित करती हैं। एक उच्चवर्गीय शिक्षित स्त्री की सामाजिक समस्याएँ और एक दलित श्रमिक स्त्री की समस्याएँ 'स्त्री' होने के साझा अनुभव के बावजूद समान नहीं हो सकतीं। इसी प्रकार ग्रामीण निर्धन स्त्री, शहरी मध्यवर्गीय स्त्री और आर्थिक रूप से स्वतंत्र स्त्री के सामने मौजूद सामाजिक चुनौतियों की प्रकृति भी अलग होती है।

इस दृष्टि से हिंदी साहित्य को पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि स्त्री-विमर्श एक एकरूप अनुभव नहीं है। स्त्री के भीतर भी अनेक सामाजिक विभाजन और असमानताएँ मौजूद हैं। दलित स्त्री, आदिवासी स्त्री, श्रमिक स्त्री, ग्रामीण स्त्री और निम्नवर्गीय स्त्री के अनुभव मुख्यधारा के स्त्री-विमर्श को नई दिशा देते हैं।

अंतर्विभाजक नारीवाद की अवधारणा

अंतर्विभाजकता का मूल विचार यह है कि किसी व्यक्ति की सामाजिक पहचान एक ही श्रेणी से निर्धारित नहीं होती। व्यक्ति एक साथ स्त्री, दलित, गरीब, ग्रामीण, श्रमिक, अल्पसंख्यक या किसी अन्य सामाजिक स्थिति से संबंधित हो सकता है। इन पहचानों का प्रभाव अलग-अलग नहीं बल्कि एक-दूसरे से जुड़कर काम करता है।

क्रेंशॉ ने इस बात पर बल दिया कि सामाजिक भेदभाव की अलग-अलग श्रेणियों को स्वतंत्र मानकर देखने से उन लोगों के अनुभव अदृश्य हो सकते हैं जो एक से अधिक प्रकार के भेदभाव का सामना करते हैं [1]। आगे चलकर यह अवधारणा नारीवादी अध्ययन में अत्यंत प्रभावशाली हुई और विभिन्न समाजों में वर्ग, जाति, नस्ल, धर्म तथा अन्य सामाजिक संरचनाओं के साथ लैंगिक संबंधों को समझने का महत्वपूर्ण उपकरण बनी [2]।

भारतीय संदर्भ में अंतर्विभाजक नारीवाद का अर्थ केवल पश्चिमी सिद्धांत को भारतीय समाज पर लागू करना नहीं है। भारतीय समाज में जाति एक ऐसी ऐतिहासिक और सामाजिक संरचना है जो व्यक्ति के सामाजिक अवसरों, श्रम, सम्मान और संसाधनों तक पहुँच को प्रभावित करती है। इसलिए भारतीय स्त्री के अनुभव को समझने के लिए जाति और वर्ग की संरचनाओं को लिंग के साथ जोड़कर देखना आवश्यक है।

हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श का विकास

हिंदी साहित्य में स्त्री के प्रश्नों की उपस्थिति आधुनिक काल से पहले भी दिखाई देती है, किंतु आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री-अनुभव को अधिक व्यवस्थित रूप से अभिव्यक्ति मिली। प्रेमचंद से लेकर समकालीन महिला लेखन तक स्त्री की सामाजिक स्थिति, विवाह संस्था, आर्थिक निर्भरता, पारिवारिक नियंत्रण और सामाजिक नैतिकता पर गंभीर प्रश्न उठाए गए हैं।

प्रेमचंद के साहित्य में स्त्री और सामाजिक व्यवस्था का संबंध महत्वपूर्ण रूप से सामने आता है। उनकी कहानियों में स्त्री का जीवन केवल पारिवारिक संबंधों तक सीमित नहीं है, बल्कि गरीबी, जाति, श्रम और सामाजिक प्रतिष्ठा से भी जुड़ा हुआ है। 'ठाकुर का कुआँ' जैसी कहानी में जातिगत व्यवस्था के कारण पानी जैसी मूलभूत आवश्यकता तक पहुँच पर नियंत्रण दिखाई देता है। गंगी का अनुभव केवल एक गरीब स्त्री का अनुभव नहीं है; वह एक ऐसी दलित स्त्री का अनुभव है जिसे जाति और लिंग दोनों स्तरों पर सामाजिक सत्ता का सामना करना पड़ता है।

इस प्रकार प्रेमचंद के साहित्य को अंतर्विभाजक दृष्टि से पढ़ने पर यह समझ विकसित होती है कि सामाजिक उत्पीड़न की विभिन्न संरचनाएँ एक-दूसरे से अलग नहीं होतीं।

स्त्री और जाति का प्रश्न

भारतीय समाज में जाति का प्रश्न स्त्री के जीवन से गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। जाति-व्यवस्था केवल सामाजिक श्रेणीकरण की व्यवस्था नहीं है, बल्कि विवाह, परिवार, श्रम और सामाजिक प्रतिष्ठा को नियंत्रित करने वाली संरचना भी रही है। इस व्यवस्था में स्त्री की देह और उसकी यौनिकता का संबंध जातीय सीमाओं के संरक्षण से भी जोड़ा गया है।

डॉ. भीमराव आंबेडकर ने जाति-व्यवस्था की निरंतरता और अंतर्विवाह के संबंध पर विचार करते हुए स्त्री की भूमिका को जाति-संरचना के पुनरुत्पादन से जोड़ा था [3]। इस दृष्टि से स्त्री की स्वतंत्रता का प्रश्न जाति-विरोधी संघर्ष से अलग नहीं किया जा सकता।

हिंदी दलित साहित्य ने इस संबंध को विशेष तीव्रता के साथ सामने रखा है। दलित स्त्री लेखन में स्त्री होने और दलित होने के दोहरे अनुभव की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। यहाँ स्त्री को केवल पुरुष सत्ता से ही नहीं, बल्कि जातिगत अपमान और आर्थिक शोषण से भी संघर्ष करना पड़ता है।

कौसल्या बैसंत्री और 'दोहरा अभिशाप'

कौसल्या बैसंत्री की आत्मकथा **'दोहरा अभिशाप'** हिंदी दलित स्त्री लेखन की अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है। यह आत्मकथा जाति और पितृसत्ता के संयुक्त प्रभाव को व्यक्तिगत जीवनानुभवों के माध्यम से सामने लाती है। बैसंत्री के जीवन में जातिगत भेदभाव और स्त्री होने की सामाजिक सीमाएँ एक-दूसरे से जुड़ी हुई दिखाई देती हैं [4]।

'दोहरा अभिशाप' का महत्व इसी कारण है कि यहाँ दलित स्त्री स्वयं अपने अनुभव की वक्ता बनती है। वह किसी बाहरी लेखक की दृष्टि से प्रस्तुत की गई पात्र नहीं है, बल्कि अपने जीवन, अपमान, संघर्ष और आत्मसम्मान की कहानी स्वयं कहती है। बैसंत्री की आत्मकथा को लेकर मोनिका ब्रवार्चिक ने भी इसे हिंदी में दलित महिला आत्मकथात्मक लेखन के महत्वपूर्ण आरंभिक उदाहरणों में माना है [5]।

'दोहरा अभिशाप' शीर्षक स्वयं एक गहरे सामाजिक संकेत की ओर संकेत करता है— जाति और पितृसत्ता का संयुक्त दबाव। यहाँ 'दोहरा' केवल दो समस्याओं की संख्या नहीं है, बल्कि दो परस्पर जुड़ी हुई सत्ता-व्यवस्थाओं की ओर संकेत करता है।

सुशीला टाकभौरे और 'शिकंजे का दर्द'

सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा **'शिकंजे का दर्द'** भी दलित स्त्री के अनुभवों को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें जातिगत भेदभाव, सामाजिक अपमान, स्त्री की पारिवारिक स्थिति और पितृसत्तात्मक नियंत्रण जैसे अनेक प्रश्न एक-दूसरे से जुड़े दिखाई देते हैं [6]।

टाकभौरे का लेखन इस तथ्य को सामने लाता है कि दलित स्त्री के लिए मुक्ति का प्रश्न केवल जाति से मुक्ति या केवल पितृसत्ता से मुक्ति का प्रश्न नहीं है। उसकी वास्तविक मुक्ति तभी संभव है जब सामाजिक, आर्थिक और लैंगिक असमानताओं को एक साथ संबोधित किया जाए।

इस प्रकार 'शिकंजे का दर्द' को अंतर्विभाजक दृष्टि से पढ़ना हमें यह समझने में सहायता करता है कि जाति और पितृसत्ता एक-दूसरे से स्वतंत्र सत्ता-संरचनाएँ नहीं हैं; कई परिस्थितियों में वे एक-दूसरे को मजबूत करती हैं।

स्त्री और वर्ग का प्रश्न

स्त्री-विमर्श में वर्ग का प्रश्न भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना जाति का। आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण व्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक स्थिति को प्रभावित करता है।

आर्थिक रूप से संपन्न स्त्री और निर्धन स्त्री के लिए स्वतंत्रता, शिक्षा, विवाह, रोजगार और निर्णय लेने की परिस्थितियाँ समान नहीं होतीं।

सिमोन द बोउवार ने 'The Second Sex' में स्त्री की सामाजिक स्थिति को उसके आर्थिक और सामाजिक निर्भरता के संदर्भ में समझने की आवश्यकता पर बल दिया [7]। वहीं समाजवादी और मार्क्सवादी नारीवादी चिंतन ने स्त्री के घरेलू श्रम, उत्पादन व्यवस्था और आर्थिक निर्भरता को लैंगिक असमानता के महत्वपूर्ण आधारों के रूप में देखा।

भारतीय संदर्भ में वर्ग और जाति कई बार एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। ऐतिहासिक रूप से वंचित जातियों की बड़ी आबादी आर्थिक संसाधनों से भी वंचित रही है। इसलिए दलित स्त्री के अनुभव में जाति और वर्ग का प्रश्न अक्सर साथ-साथ उपस्थित होता है।

ग्रामीण स्त्री, श्रम और सामाजिक असमानता

हिंदी साहित्य में ग्रामीण स्त्री का चित्रण भी अंतर्विभाजक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ग्रामीण समाज में स्त्री का श्रम अक्सर परिवार और कृषि-व्यवस्था के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, लेकिन उस श्रम को सामाजिक और आर्थिक मान्यता कम मिलती है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में ग्रामीण स्त्री, देह, जाति, सामंती मानसिकता और सामाजिक नैतिकता के अनेक प्रश्न दिखाई देते हैं। उनके साहित्य में स्त्री केवल पीड़ित पात्र नहीं है; वह अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और प्रतिरोध के साथ उपस्थित होती है।

इस प्रकार ग्रामीण स्त्री के साहित्यिक चित्रण को केवल 'नारी मुक्ति' के सामान्य प्रश्न से जोड़ना पर्याप्त नहीं है। उसके अनुभव को भूमि, श्रम, जाति, परिवार और स्थानीय सत्ता-संबंधों के साथ जोड़कर पढ़ना आवश्यक है।

मुख्यधारा के नारीवाद की सीमाएँ

भारतीय नारीवादी विमर्श के विकास ने स्त्री की स्वतंत्रता और समानता के महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए हैं, लेकिन दलित और आदिवासी स्त्री लेखन ने मुख्यधारा के नारीवादी विमर्श की कुछ सीमाओं की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है।

यदि 'स्त्री' को एक समान सामाजिक श्रेणी मान लिया जाए, तो स्त्रियों के बीच मौजूद जातिगत और वर्गीय असमानताएँ छिप सकती हैं। एक शिक्षित मध्यवर्गीय स्त्री के लिए जो प्रश्न केंद्रीय हो सकता है, वही प्रश्न एक खेतिहर मजदूर या दलित स्त्री के लिए अलग रूप ले सकता है।

बेल हुक्स (bell hooks) ने नारीवादी आंदोलन में वर्ग और नस्लीय असमानताओं की उपेक्षा की आलोचना करते हुए यह रेखांकित किया कि सभी स्त्रियों का अनुभव समान नहीं होता [8]। भारतीय संदर्भ में इस विचार को जाति और वर्ग की संरचनाओं के साथ जोड़कर देखना विशेष रूप से उपयोगी है।

दलित स्त्री लेखन: अनुभव से प्रतिरोध तक

दलित स्त्री लेखन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है—**अनुभव की प्रामाणिकता**। यह साहित्य उन अनुभवों को आवाज देता है जिन्हें लंबे समय तक मुख्यधारा के साहित्य में हाशिए पर रखा गया।

दलित स्त्री के लिए लेखन केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक स्मृति और प्रतिरोध का माध्यम भी बन जाता है। आत्मकथा, कविता, कहानी और संस्मरण के माध्यम से दलित स्त्रियाँ अपने जीवन के उन पक्षों को सामने लाती हैं जिनमें जातिगत अपमान, श्रम, हिंसा, शिक्षा के संघर्ष, पारिवारिक नियंत्रण और आत्मसम्मान की खोज शामिल है।

कौसल्या बैसंत्री और सुशीला टाकभौरे का लेखन इसी प्रतिरोधी परंपरा का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इनके लेखन में 'मैं' केवल व्यक्तिगत 'मैं' नहीं रह जाता, बल्कि वह एक व्यापक सामाजिक समुदाय के अनुभव का प्रतिनिधित्व करने लगता है।

जाति, वर्ग और देह

स्त्री की देह हिंदी साहित्य में लंबे समय से एक महत्वपूर्ण विषय रही है। किंतु अंतर्विभाजक दृष्टि से देह को केवल यौनिकता या सौंदर्य के प्रश्न के रूप में नहीं देखा जा सकता। स्त्री की देह पर सामाजिक नियंत्रण जाति और वर्ग से भी जुड़ा होता है।

जाति-व्यवस्था में विवाह और यौन संबंधों पर नियंत्रण सामाजिक संरचना को बनाए रखने का एक महत्वपूर्ण माध्यम रहा है। दूसरी ओर निम्नवर्गीय और श्रमिक स्त्रियों की देह श्रम और आर्थिक शोषण का भी क्षेत्र बनती है।

इसलिए स्त्री की देह को स्वतंत्रता और नियंत्रण दोनों के संदर्भ में पढ़ना आवश्यक है। साहित्य इस जटिलता को सामने लाने का महत्वपूर्ण माध्यम बनता है।

भाषा और साहित्यिक प्रतिनिधित्व

अंतर्विभाजक नारीवादी दृष्टि केवल यह नहीं पूछती कि साहित्य में स्त्री के बारे में क्या लिखा गया है, बल्कि यह भी पूछती है कि **कौन लिख रहा है, किसकी आवाज में लिख रहा है और किसकी आवाज अनुपस्थित है।**

मुख्यधारा के साहित्य में लंबे समय तक दलित स्त्री का प्रतिनिधित्व प्रायः बाहरी दृष्टि से हुआ। दलित स्त्री लेखन के उदय ने इस स्थिति में परिवर्तन किया। अब दलित स्त्री स्वयं अपने अनुभव की व्याख्याकार बनती है।

इस परिवर्तन का साहित्यिक महत्व बहुत बड़ा है। इससे साहित्य में अनुभव की विविधता बढ़ती है और 'स्त्री' की एकरूपी छवि टूटती है।

आत्मकथा और अंतर्विभाजक स्त्री-अनुभव

हिंदी दलित साहित्य में आत्मकथा ने विशेष महत्व प्राप्त किया है। आत्मकथा के माध्यम से लेखक अपने निजी जीवन को सामाजिक इतिहास से जोड़ता है। दलित स्त्री आत्मकथा में यह प्रक्रिया और अधिक जटिल हो जाती है क्योंकि व्यक्तिगत स्मृति के भीतर जाति, लिंग और वर्ग के अनुभव एक साथ उपस्थित होते हैं।

कौसल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' और सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' जैसी कृतियाँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इनमें व्यक्तिगत जीवन केवल निजी अनुभव नहीं रह जाता; वह सामाजिक संरचनाओं की आलोचना का माध्यम बन जाता है।

दलित आत्मकथाओं पर किए गए अध्ययनों में भी यह रेखांकित किया गया है कि ये रचनाएँ दलित समुदाय के इतिहास, स्मृति और वर्तमान सामाजिक अनुभवों को दर्ज करने का महत्वपूर्ण माध्यम हैं [5,9]।

स्त्री, जाति और वर्ग के बीच प्रतिरोध की संभावनाएँ

अंतर्विभाजक दृष्टि का उद्देश्य केवल उत्पीड़न की अनेक परतों को पहचानना नहीं है। इसका दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष प्रतिरोध की संभावनाओं को समझना भी है।

शिक्षा, लेखन, रोजगार, संगठन और सामाजिक आंदोलन स्त्री को अपनी स्थिति बदलने के अवसर प्रदान करते हैं। डॉ. आंबेडकर ने शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण साधन माना था [3]। दलित स्त्री लेखन में शिक्षा की आकांक्षा बार-बार दिखाई देती है क्योंकि

शिक्षा केवल रोजगार प्राप्त करने का माध्यम नहीं, बल्कि आत्मसम्मान और सामाजिक चेतना का आधार भी बनती है।

इस संदर्भ में दलित स्त्री लेखन को केवल पीड़ा का साहित्य मानना उचित नहीं होगा। इसमें संघर्ष, चेतना, आत्मनिर्णय और प्रतिरोध की मजबूत आकांक्षा भी दिखाई देती है।

हिंदी साहित्य के पुनर्पाठ की आवश्यकता

अंतर्विभाजक दृष्टि हिंदी साहित्य के पुनर्पाठ की आवश्यकता पैदा करती है। साहित्यिक कृतियों को केवल लेखक की संवेदना या स्त्री पात्रों की संख्या के आधार पर नहीं, बल्कि सामाजिक सत्ता-संबंधों के संदर्भ में भी पढ़ना चाहिए।

प्रेमचंद की कहानियों से लेकर समकालीन दलित और महिला लेखन तक अनेक रचनाओं में जाति, वर्ग और लिंग की अंतःक्रियाएँ दिखाई देती हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इन रचनाओं को अलग-अलग खाँचों में रखने के बजाय इनके बीच संबंध स्थापित किए जाएँ।

उदाहरण के लिए, दलित साहित्य को केवल जाति-विमर्श और स्त्री साहित्य को केवल लैंगिक विमर्श तक सीमित करने से दोनों के बीच मौजूद महत्वपूर्ण संबंधों की उपेक्षा हो सकती है। अंतर्विभाजक दृष्टि इन विमर्शों के बीच संवाद स्थापित करती है।

समकालीन संदर्भ में अंतर्विभाजक नारीवाद

आज के समय में स्त्री-अनुभव और अधिक जटिल हो गया है। शिक्षा, रोजगार, डिजिटल माध्यम और सामाजिक गतिशीलता ने स्त्रियों के लिए नए अवसर पैदा किए हैं, लेकिन दूसरी ओर जाति, वर्ग, आर्थिक असमानता और सामाजिक रूढ़ियाँ अब भी अनेक स्त्रियों के जीवन को प्रभावित करती हैं।

डिजिटल माध्यमों ने हाशिए की आवाजों को सार्वजनिक मंच उपलब्ध कराया है। फिर भी डिजिटल पहुँच स्वयं वर्ग, शिक्षा और संसाधनों से प्रभावित होती है। इसलिए डिजिटल स्त्री-अभिव्यक्ति को भी अंतर्विभाजक दृष्टि से देखना आवश्यक है।

समकालीन हिंदी साहित्य में दलित, आदिवासी, ग्रामीण, श्रमिक और अन्य हाशिए की स्त्रियों की आवाजों की बढ़ती उपस्थिति साहित्य के लोकतांत्रिक विस्तार का संकेत है। यह विस्तार साहित्य के विषयों के साथ-साथ साहित्यिक सत्ता-संरचनाओं को भी चुनौती देता है।

निष्कर्ष

हिंदी साहित्य में स्त्री को समझने के लिए केवल लैंगिक दृष्टि पर्याप्त नहीं है। स्त्री का जीवन जाति, वर्ग, आर्थिक स्थिति, सामाजिक प्रतिष्ठा, शिक्षा और सांस्कृतिक परिवेश जैसी अनेक संरचनाओं से प्रभावित होता है। इसलिए स्त्री-अनुभव की वास्तविक जटिलता को समझने के लिए अंतर्विभाजक नारीवादी दृष्टि अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है।

किम्बर्ले क्रेंशॉ की अंतर्विभाजकता की अवधारणा ने यह स्पष्ट किया कि सामाजिक पहचान की विभिन्न श्रेणियाँ एक-दूसरे से अलग होकर काम नहीं करतीं [1]। भारतीय संदर्भ में जाति और वर्ग को इस अवधारणा के साथ जोड़ना आवश्यक हो जाता है। डॉ. आंबेडकर का जाति-विमर्श, सिमोन द बोउवार का स्त्री-अस्तित्व संबंधी चिंतन और बेल हुक्स का वर्ग तथा नस्ल के संदर्भ में नारीवादी पुनर्विचार इस बहस को व्यापक वैचारिक आधार प्रदान करते हैं [3,7,8]।

कौसल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' और सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' जैसी रचनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि दलित स्त्री की आवाज को केवल 'स्त्री साहित्य' या केवल 'दलित साहित्य' की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। वह दोनों विमर्शों के अंतर्संबंध से निर्मित एक विशिष्ट अनुभव संसार है।

अंतर्विभाजक नारीवादी दृष्टि हिंदी साहित्य को अधिक व्यापक, लोकतांत्रिक और संवेदनशील ढंग से पढ़ने का अवसर देती है। यह हमें यह समझने के लिए प्रेरित करती है कि किसी भी स्त्री की कहानी केवल 'स्त्री होने' की कहानी नहीं होती; उसके भीतर जाति, वर्ग, श्रम, परिवार, देह, शिक्षा, आर्थिक स्थिति और सामाजिक सत्ता की अनेक परतें सक्रिय होती हैं।

इसलिए हिंदी साहित्य का भविष्यगत स्त्री-विमर्श उस समय अधिक सार्थक होगा जब वह स्त्री को एक समान और एकरूप श्रेणी मानने के बजाय **अनेक सामाजिक पहचानों के संगम पर स्थित मनुष्य** के रूप में देखेगा। यही दृष्टि स्त्री-मुक्ति के विमर्श को अधिक न्यायपूर्ण, समावेशी और भारतीय सामाजिक यथार्थ के अधिक निकट ले जा सकती है।

संदर्भ

1. Crenshaw K. Demarginalizing the intersection of race and sex: a Black feminist critique of antidiscrimination doctrine, feminist theory and antiracist politics. University of Chicago Legal Forum. 1989;1989(1):139-167.
2. Carbado DW, Crenshaw KW, Mays VM, Tomlinson B. Intersectionality: mapping the movements of a theory. Du Bois Rev. 2013;10(2):303-312.
3. Ambedkar BR. Annihilation of caste. New Delhi: Navayana; 2014.

4. बैसंत्री कौसल्या. दोहरा अभिशाप. नई दिल्ली: किताबघर प्रकाशन; 1999.
5. Browarczyk M. The double curse—a Dalit woman autobiography in Hindi by Kausalya Baisantri. Cracow Indological Studies. 2013;15(2):169-187.
6. टाकभौरे सुशीला. शिकंजे का दर्द. नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन; 2011.
7. Beauvoir S de. The second sex. Borde C, Malovany-Chevallier S, translators. New York: Vintage Books; 2011.
8. hooks b. Feminist theory: from margin to center. 2nd ed. Cambridge (MA): South End Press; 2000.
9. Browarczyk M. WE are Dalit history: Hindi Dalit autobiographies and their engagements with India's past and present. Cracow Indological Studies. 2021;23(2):1-39.
10. Kalyani K, et al. Aesthetics and politics of Dalit women's writings within Indian pedagogic practices. Indian J Gender Stud. 2023;15(1_suppl):S56-S66.

Dr. A. V. Nandaniya
Associate Professor,
Shri V. M. Mehta Muni. Arts & Commerce College, Jamnagar.